© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 05 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

सशक्तिकरण के भारतीय संदर्भ

डा0 राममेहर सिंह, सह-प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
छोटूराम किसान स्नातकोत्तर ,महाविद्यालय,जीन्द।

नारी सशक्तिकरण वर्तमान दुनिया का बेहद जरूरी विमर्श है। चूंकि यह नारी की स्वतंत्रता, समानता, मजबूती और महत्ता का हिमायती है, इसलिए इसे सम्पूर्ण मानव जाति के आधे हिस्से की बेहतरी से जुड़ा विमर्श कहा जा सकता है। यूरोप में इसकी शुरुआत कोई दो शताब्दी पूर्व हुई, जब 1792 में मेरी बोल्स्टन क्राफ्ट की पुस्तक 'द विन्डिक्शन ऑफ द राइट्स आफ विमेन' का प्रकाशन हुआ। इससे पहली बार मेरी ने फ्रांस क्रान्ति से प्रभावित होकर 'स्वतंत्रता-समानता-मातृत्व' के सिद्धान्त को स्त्री समुदाय पर भी लागू करने की मांग की। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि कोई भी समतावादी सामाजिक दर्शन तब तक वास्तविक अर्थो में समतावादी नहीं हो सकता जब तक कि वह स्त्रियों को समान अधिकार और अवसर देने तथा उनकी हिफाजत करने की हिमायत नहीं करता। इसलिए **मेरी बोल्स्टन क्राफ्ट** को स्त्री मुक्ति का आदि सिद्धान्तकर माना जाता है। बाद में स्त्री की मुक्ति की इस वकालत जॉन स्टुअर्ट गिल ने 1869 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'द सब्जेकशन ऑफ विमेन'** में की, जिसे और मजबूत स्वर मिला 1949 में प्रकाशित पुस्तक 'द सेकण्ड सेम्स से। इन सबके सम्मिलित एवं निरन्तर प्रयास से ही यूरोप में फ्रांसीसी क्रांति के दौरान शुरू हुआ संगठित स्त्रीवादी आंदोलन सघन और व्यापक रूप ले सका।

भारत में स्त्री के हित और अधिकारों से जुड़े आंदोलन की शुरूआत उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुई। तब न्याय, नैतिकता, आचार और परंपरा से संबंधित विमर्श भी हुए। परन्तु इन सब पर कहीं न कहीं राष्ट्रीय गुलामी की छाया पड़ी रही। बीसवीं सदी के राष्ट्रीय जागरण काल में यद्यपि स्त्री-मुक्ति की चिंता भी शामिल थी, लेकिन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की तीव्रता के कारण यह चिंता कोई स्पष्ट आकार ग्रहण नहीं कर सकी। आकार की यह स्पष्टता कोई ढाई-तीन दशक पहले के स्त्रीवादी आन्दोलनों में प्रकट होनी शुरू हुई, जब वैचारिक स्तर पर स्त्री-मुक्ति की नयी लहर उठी। स्त्री सशक्तिकरण इसी लहर की तार्किक परिणति है। इसलिए इसे वक्त के कैनवस पर स्त्री के भविष्य का स्केच कहा जा सकता है। यह स्केच भारत सहित पूरी दुनिया में खींचा जा रहा है और यह प्रयास किए जा रहे है कि स्त्री इसमें अपनी इच्छानुसार रंग भर सके।

स्त्रियों की यह दारूण स्थिति भारत समेत पूरी दुनिया में थी। सब जगह उनको पुरुषों के अत्याचार सहने पड़े रहे थे। उनके शोषण से रू-ब-रू होना पड़ रहा था और इसका आधार लिंग भेद था। जबकि लिंग के आधार पर ऐसा होना नहीं चाहिए। लिंग की भिन्नता शरीर की भिन्नता से तय होती है और शरीर की भिन्नता किी को दोयम दर्जे की नहीं बनाती। शरीर के कारण कोई ऊंच-नीच, शिक्षित-अशिक्षित, मूर्ख-बुद्धिमान, स्वतंत्र-परतंत्र, समान-असमान तथा अधिकारयुक्त अथवा अधिकारच्युत नहीं होता और न होना चाहिए। इसलिए सिमोन ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा, ''शारीरिक भिन्नता के बावजूद ये सीमायें औरत की अनिवार्य ओर स्थायी नियति के रूप में नहीं स्वीकारी जा सकतीं। शारीरिक भिन्नता यह नहीं स्थापित करती कि औरत अन्या, गौण या यौनजनित सोपानीकरण में नीचे की सीढ़ी

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 05 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

पर बैठी हुई है। ये जैविक परिस्थितियां औरत को अधीनस्थ भूमिका स्वीकारने के लिए मेरी समक्ष में बाध्य नहीं कर सकती।''

ऐसी ही समझ जब भारत में विकसित हुई तो यहां भी स्त्रियों की बेहतरी के प्रयास शुरू हुए। स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा और स्वास्थ्य के उनके अधिकारों पर बल दिए गए। उन्हें घर से बाहर निकलने की सुविधा दी गई। अर्थोपार्जन के अवसर उपलब्ध करवाए गए। उनके दायित्वों का संकुचित दायरा टूटा। सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में भागीदारी के मौके मिले। उन पर लगी गई प्रकार की पाबंदियां और वर्जनाएं खत्म हुई। इनमें कुछ तो स्त्रियों ने अपने संघर्ष में हासिल किए परंतु अधिकांश द्वारा राजनैतिक और वैधानिक प्रावधानों के अंतर्गत दिए गए, जो अब तक पर्याप्त नहीं है।

परंतु इससे बंद दीवार में एक खिड़की खुली, जिसमें स्त्री को बाहर झांकने का मौका मिला। उसने सुनहरी धूप और ताजी हवा के बारे में जाना। उनमें दीवार से बाहर आने की ललक पैदा हुई। खुले आकाश में उड़ने की आकांक्षा ने पंख फैलाए। ऐसा इसलिए हुआ कि यद्यपि किसी भी तरह के राजनैतिक और वैधानिक प्रावधान सहजता से तत्काल समाज में स्वीकृत नहीं हो पाते, परंतु एक शुरुआत जरूर होती है जिसे धीरे- धीरे स्वीकृति मिलने लगती है, हालांकि इसमें एक लंबा वक्त लगता है। स्त्री की समानता और स्वतंत्रता को लेकर भी ऐसा ही हुआ है। उसने इस दिशा में अतीत से लेकर अब तक एक लंबी यात्रा की है फलस्वरूप उसके स्त्रीत्व की छुई-मुई वाली मानक छवि में एक तब्दीली आई है और उस तब्दीली को समाज में स्वीकृति भी मिलने लगी है। बावजूद इसके अभी वह इतनी समर्थ नहीं हुई है कि इस बदली छवि को मनचाहे ढंग से सजा सकें। स्त्री सशक्तीकरण इसी संपूर्ण सामर्थ्य के लिए किया गया प्रतिबद्ध और प्रामाणिक प्रयास है। इसका प्रस्थान बिंदु स्त्रियों द्वारा अपनी छवि और अपना कार्य दोनों के निर्धारण संबंधी अपना निर्णय स्वयं लेने का अधिकार है, जिसकी सार्थकता किसी के दे देने में नहीं, स्वयं आगे बढ़कर ले लेने में है। दरअसल, दूसरों द्वारा दी गई स्वतंत्रता भी परतंत्रता होती है जबकि अपने द्वारा ली गई परतंत्रता भी स्वतंत्रता। इसलिए स्त्रियों को भी अपनी स्वतंत्रता लेनी पड़ेगी। लेकिन स्वतंत्रता बहुत जोखिम भरी होती है, क्योंकि उसके साथ जिम्मेवारी भी अवियोज्य रूप से जुड़ी रहती है। अतः स्त्रियों को सशक्तीकरण का दस्तावेज लिए ठहर कर सावधानीपूर्वक यह तय करना पड़ेगा कि उनकी स्वतंत्रता और समानता का स्वरूप कैसा हो और उन्हें प्राप्त करने की प्रक्रिया क्या हो।

इसी तरह उन्हें आज के बाजारवाद और उपभोक्तावाद के शिकंजे से भी अपनी आजादी और अस्मिता को बचाए रखने की जरूरत है। वैज्ञानिक आविष्कारों के बाद औद्योगिक प्रगति के क्रम में जो नयी सभ्यता विकसित हुई है उसके केन्द्र में बाजार है। बाजार का दबाव आज हर क्षेत्र में है। आदमी की सोच, शैली, गति और दिशा सब बाजार तय कर रहा है। जो देश आर्थिक उन्नति के शीर्ष पर है, उनका मुख्य काम नये-नये उत्पाद निर्मित कर पूरी दुनिया में

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 05 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

बेचना है। उनके नक्शे-कदम पर चलते हुए बाकि के देश भी यही कर रहे हैं। अब उत्पादो को खरीदने के लिए उपभोक्ता भी चाहिए। उपभोक्ताओं को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन का सहारा लिया जाता है। स्त्रियां इसका माध्यम बन रही है। वे अपने रंग-रूप के सहारे इन उत्पादों को बेचने में लगी हैं ओर प्रकारांतर से खुद अपना सौदा कर रही है। विज्ञापन इस नयी सभ्यता द्वारा स्त्रियों के लिए निर्मित किया हुआ नया बंध है, जो आकर्षक और खूबसूरत होने के कारण उन्हें सहज स्वीकार्य लगता है।

मगर इसके पीछे भी पुरूष की चालाकी और कुटिलता है। आज के अर्थयुग में अपने अधिकाधिक लाभ के लिए वह स्त्री का उपयोग कर लेना चाहता है। इसके लिए स्त्री का गुलाम रहना जरूरी है। इसलिए वह गुलामी से ज्यादा मोहक और नफीस तरीके निर्मित कर रहा है, जो पहले से ज्यादा ठोस और सख्त है। दिलचस्प बात यह है कि स्त्रियां भी इसे अपनी मुक्ति का पर्याय मान रही हैं। परन्तु यह कितनी बड़ी विडंबना है कि स्त्री की मुक्ति और अधिकार की लड़ाई को देह की नग्नता और उपभोग की स्वच्छंदता से परिभाषित किया जाए? उसे वर्जनाओं से मुक्ति मिलने के बदले वस्त्रों से मुक्ति मिले । स्त्रियों ने अपने पुराने गहने, बंधन के प्रतीक मानकर इसलिए नहीं उतारे थे कि अपने बाल को काले-घने रखने तथा अंग-अनुपात का सौष्ठव बनाए रखने जैसे शरीर के रखरखाव संबंधी नये गहनों से सज-संवर कर फिर से बंध जाए। वरिष्ठ साहित्यकार प्रभाकर श्रोत्रिय इस पर विस्तार से विचार करते हुए कहते हैं, ''यह सूक्ष्म और वायवीय कैद पहले की कैदों से ज्यादा मजबूत है। यह अधिक चुनौतीपूर्ण इसलिए हो उठा है कि स्वयं स्त्रियों का एक वर्ग नये भ्रमजाल में फंसकर स्त्री मात्र को फंसा रहा है, बिना यह सोचे कि साबुन के सानिध्य में प्रेमिका जैसी लाज, साबुन और हवाखोरी के रिश्ते, सांसो की खुशबू से प्रेम संबंध का निर्धारण, असंख्य स्त्रियों को क्या संदेश दे रहा है। स्त्री क्यों इंकार नहीं करती कि वह बाजार का माध्यम नहीं बनेगी। अपनी व्यावसायिक आत्मनिर्भरता के बदले लाखों-करोड़ों स्त्रियों को वस्तुओं का दास नहीं बनाएगी। अपनी स्वतंत्रता और समानता के लिए संघर्ष करने वाली दुनिया की तमाम स्त्रियों और स्त्रीवादी आंदोलनों को इस साजिश को समझते हुए इससे सचेत रहना पड़ेगा।''

फिर भारतीय स्त्रियों को एक अतिरिक्त सावधानी यह भी बरतनी पड़ेगी कि वे पश्चिमी स्त्रीवादी विमर्श को अपना आदर्श न मानें। कोई भी व्यति वहीं के चौखटे तोड़ सकता है, जहां वह रहता है। इसलिए भारतीय स्त्री को भी यहां के चौखटों को पहचान कर उन्हें ही तोड़ने का प्रयास करना चाहिए। चूंकि भारतीय स्त्रीवादी आंदोलनों के विकास में पश्चिमी स्त्रीवादी आंदोलनों की महती भूमिका रही है, इसलिए भारतीय आंदोलनों पर पश्चिम का पर्याप्त प्रभाव रहा है और यहां के आंदोलन अपना उपजीव्य भी वहीं से प्राप्त करते रहे हैं। इसलिए यहां के व्यावहारिक कार्यक्रमों में भी वहां के आदर्शों और योजनाओं का समावेश रहा है। यहां के स्त्रीवादी आंदोलनों की बागडोर यहां के अभिजात वर्गों के हाथ में रही है और यहां अभिजात होने का अर्थ पश्चिम के तर्ज पर ही एकल जीवन की सुरक्षा,

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 05 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

बिना विवाह के पुरूष के साथ रहने की स्वीकृति, कुंवारी मां बनने का अधिकार, विवाह करके भी मां नहीं बनने की छूट, तलाक की सुविधा, विवाहेतर यौन संबंधों की इजाजत, एक से अधिक विवाह का हक, इच्छानुसार प्रेम-संबंधों की अनुमति आदि मिलने की स्वच्छंदता शामिल हैं। कुल मिलाकर यह एक ऐसी जीवनशैली की वकालत है, जिसमें जो मन आए वही करने की आजादी हासिल हो। यद्यपि पश्चिम से प्रभावित अभिजात वर्ग की स्त्रियों ने ऐसी आजादी के लिए ईमानदार प्रयास किए परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। इसलिए कि उनके तमाम व्यावहारिक कार्यक्रम स्थानीयता से कटे रहे। यद्यपि इन्होंने न्याय, समानता, मानवीयता, स्वतंत्रता जैसे कई आधारभूत प्रश्न खड़े किए, जो पश्चिमी स्त्रीवादी विमर्श से इन्हें मिले हैं, परंतु यहां के लिए प्रासांगिक और जरूरी होने के बावजूद ये सारे प्रश्न बेमानी हो गए, क्योंकि इनका व्यावहारिक कार्यान्वयन भारतीयता के संदर्भ में नहीं किया जा सका।

इसलिए भारतीय स्त्रियों की स्वतंत्रता और समानता की रूपरेखा यहां की नैतिकता, परंपरा, संस्कृति और सभ्यता को ध्यान में रखकर तय करनी होगी, क्योंकि ये देश-काल सापेक्ष होती हैं, निरपेक्ष नहीं। इसलिए पश्चिमी समाज की परंपरा और नैतिकता भारतीय समाज के लिए स्वीकृति नहीं हो सकती, न वहां की सभ्यता और संस्कृति यहां के लिए अनुकरणीय। यही वजह है कि पश्चिम से आयातित यौन उन्मुक्तता, शरीर उद्योग, अनब्याही पत्नी तथा कुंवारी मां जैसे आदर्श अपवादों को छोड़कर भारत के शेष स्त्री समुदाय का अभीष्ट नही है। वह इनके बिना ही स्वतंत्रता और समानता प्राप्त करना चाहती है। यह बात भारतीय स्त्रीवादी आंदोलनों की अगुवाई करने वाले स्त्रीवर्ग को भी समझ लेनी चाहिए। उन्हें यह स्वीकारना चाहिए कि भारतीय स्त्री के लिए सुखद दांपत्य और किलकते बच्चों की तुलना में शरीर और यौन संबंधी जरूरतें गौण महत्व की होती हैं। यहां की परंपरा भी ऐसी ही रही है। यहां वैयक्तिक तुष्टि के लिए अनियंत्रित यौन संबंधों की वकालत कभी नहीं की गई बल्कि संतानोत्पत्ति के लिए मर्यादित यौन संबंध की स्वीकृति दी गई है और उसका आधार एकनिष्ठ दांपत्य को माना गया है। इसलिए यहां की स्त्री यह जानती है कि परिवार और नैतिकता के संदर्भ में यौन स्वच्छंदता के बगैर भी वह समान और स्वतंत्र हो सकती है। इसलिए उसकी मुक्ति और समानता का अर्थ उसके साथ किया जाने वाला मानवीय व्यवहार है, जिसके अंतर्गत उसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार तथा निर्णय के समान अवसर उपलब्ध हों। उसका दांपत्य जीवन सुखद तथा स्थायी हो तथा बांझ होने अथवा बेटे की मां न बन पाने की स्थिति में भी उसे अपमानित न होना पड़े। अतः उसके सशक्त होने का तात्पर्य पुरुष से सर्वथा विलग होकर कोई स्वायत्त स्त्री-समाज निर्मित कर लेना नहीं है, अपितु पुरूष के साथ रहते हुए उसका दृष्टिकोण बदल पाना है ताकि वह उसके साथ समान और सम्मानित व्यवहार कर सके। स्त्री विमर्श की प्रामाणिक लेखिका अर्चना वर्मा के शब्दों में 'प्रश्न पुरूष पर निर्भरता से मुक्ति का नहीं, पुरूष का दृष्टिकोण बदल पाने का है जिससे कि निर्भरता में भी सम्मानीय रहा जा सके।''

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 05 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

यह इसलिए जरूरी है कि स्त्री-पुरूष के पार्थक्य से परिवार टूटता है, जिसका सर्वाधिक खामियाजा बच्चे को भुगतना पड़ता है। बच्चे भविष्य होते हैं, इसलिए उन्हें हाशिये पर रखकर किसी भी भविष्य के बारे में कोई सार्थक विचार संभव नहीं हो सकता। बेहतर भविष्य के लिए बच्चों का स्वास्थ्य और संतुलित विकास जरूरी है, जो सुखमय परिवार में ही संभव हो सकता है। स्पष्ट हुई है कि वहां के भारतीय बच्चे अमरीकी बच्चे की तुलना में विद्यमान तथा अन्य क्षेत्रों में इसलिए अधिक सफल हो पाते हैं कि उनका पालन-पोषण सुखी परिवार में होता है जबकि अमरीकी बच्चे इससे वंचित रह जाते हैं।

इसलिए स्त्री को आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना जरूरी नहीं है। यद्यपि आर्थिक स्वतंत्रता किसी के लिए भी स्वतंत्र होने की अनिवार्य शर्त है, परंतु इतने मात्र से कोई स्त्री स्वतंत्र हो जाएगी, ऐसा नहीं है। कई बार ऐसा होता है कि आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के बावजूद पत्नी का अपनी कमाई पर अधिकार नहीं होता। पति जोर-जबरदस्ती से उसे छीनकर अपने हिसाब से खर्च अथवा दुरूपयोग करता है। इसलिए वास्तविक स्वतंत्रता तो निर्णय की स्वतंत्रता है। अत: भारतीय पारिवारिक संरचना में यदि स्त्री का दांपत्य जीवन सुखी और अनुकूल है तो आर्थिक स्वतंत्रता के बगैर भी वह स्वतंत्र हो सकती है। यदि पत्नी का अर्थोपार्जन करना जरूरी हो जाता है लेकिन तब पति का भी दायित्व हो जाता है कि वह पत्नी का सहयोग करे। ऐसी स्थिति में जब अर्थोपार्जन के लिए स्त्री का घर से बाहर निकलना जरूरी है, उसके काम के घंटे, काम का समय, नौकरी की आयु सीमा, छुट्टियों का प्रावधान आदि पुरूषों से भिन्न होने चाहिए। इससे वह अपने बच्चों का पालन-पोषण सही ढंग से कर पाएगी। मगर किसी भी हाल में सुखी परिवार और संतुष्ट दांपत्य में कोई बिखराव नहीं आना चाहिए ताकि बच्चे, जो पति-पत्नी दोनो की अमूल्य निधि और भविष्य हैं, का संतुलित और समुचित विकास हो सके। फिर बच्चों के साथ-साथ परिवार से स्त्री-पुरूष दोनों के हित भी जुड़े होते हैं।

इसलिए स्त्री सशक्तिकरण के लिए चलाए जाने वाले आंदोलनों को स्त्री बनाम पुरूष की लड़ाई में बदलकर लड़ने की जरूरत नहीं है, क्योंकि यदि स्त्रीवादी विमर्श की इस बुनियादी स्थापना को स्वीकार कर लिया जाए कि स्त्री कोई बनी-बनाई चीज नहीं होती, बना दी जाती है तो फिर यह स्वीकारना पड़ेगा कि पुरूष भी कोई बनी-बनाई वस्तु नहीं होता, बना दिया जाता है और इन दोनों के बनने में परंपरा, इतिहास, समाज और शिक्षा आदि का महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए स्त्रीत्व और पुरूषत्व के अब तक जो प्रतिमान गढ़े गए हैं, जैसे कोमलता, समर्पण आदि स्त्रियों के गुणों और कठोरता, आक्रामकता आदि पुरूषों के गुण इत्यादि, उन पर भी विचार करने की जरूरत है और दोनों को अपने इस रूढ़ हो गए प्रतिमानों के खोल से बाहर निकालकर एक-दूसरे को अंतरंगता में जानना-समझना है ताकि उनके संबंध द्वन्द्वात्मक न होकर सहयोगात्मक बनें। स्त्री तभी सशक्त हो सकती है।स्त्री का सशक्त होना केवल उसके हित में नहीं, बल्कि पुरूष के हित में भी है, और न केवल पुरूष के बल्कि सारे समाज और राष्ट्र के हित में है। कोई भी समाज और राष्ट्र अपने आधे अंग स्त्री की मुक्ति और मजबूती के बिना उन्नति नहीं कर सकता। स्त्री मजबूत होकर इसे पूरा और सर्वांगीण बना सकती है। वह समाज, सभ्यता, संस्कृति शिक्षा आदि तमाम क्षेत्रों में बढ़कर

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 07 Issue: 05 | July – September 2016
Paper is available at www.jrps.in | Email : info@jrps.in

योगदान कर सकती है। हिंसा मुक्त अहिंसक दुनिया की संरचना कर सकती है जो प्रेम, सहयोग, करूणा और सहिष्णुता आदि सद्गुणों पर आधारित हो। ऐसा तभी हो सकता है जब स्त्री मजबूत हो। उसे ऐसी मजबूती पुरूष से अलग होकर नहीं, उसे साथ लेकर मिल सकती है। इसलिए स्त्री सशक्तिकरण कोई पुरूष निरपेक्ष नहीं बल्कि सापेक्ष विमर्श है और इसके लिए पुरूष को भी लचीला और उदार होना पड़ेगा। चूंकि किसी भी दूसरे को गुलाम और कमजोर बनाकर कोई स्वयं मुक्त और मजबूत नहीं हो सकता, इसलिए उसे समझना पड़ेगा कि स्त्री की मुक्ति और मजबूती में ही उसकी भी मुक्ति और मजबूती निहित है। ऐसी मुक्ति और मजबूती के साथ जब स्त्री-पुरुष एक-दूसरे का सहयोग करेंगे तभी उन दोनों के साथ-साथ बच्चे, समाज, देश और दुनिया का भी हित संभव हो सकता है।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य: लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : 1941 हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय प्रयाग।
2. नारी जीवन : सुलगते प्रश्न, एम. ए. अनसारी, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2006 ।
3. नारी शिक्षा एवं सशक्तीकरण, चितरंजन ओझा, रगिल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010 ।
4. अद्यतन काव्य की प्रवृत्तियां, 2000।
5. बहस में स्त्री, डॉ. महक सिंह, भानु प्रकाशन, इंदौर, 2012 ।
6. लोक संस्कृति और नारी, डॉ. विजय सिंह, क्रान्ति प्रकाशन, 2009।
7. वीमेन इन मोडर्न इण्डिया : नीरा देसाई, वोरा एण्ड कं0, दिल्ली, 1957 ।
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास: डॉ. बच्चन 1986
9. अखण्ड ज्योति : संपादक डॉ. प्रणव पण्डया, सितम्बर, 2010 ।

****